अध्याय - ७

अद्‌भुत अवतार

श्री साईबाबा की प्रकृति, उनकी यौगिक क्रियाएँ, उनकी सर्वव्यापकता, कुष्ठ रोगी की सेवा, खापर्डे के पुत्र को प्लेग, पंढरपुर गमन, अद्‌भुत अवतार।

श्री साईबाबा समस्त यौगिक क्रियाओं में पारंगत थे। छः प्रकार की क्रियाओं के तो वे पूर्ण ज्ञाता थे। छः क्रियायें, जिनमें धौति (एक ३" चौड़े व 22 $^{1}/_{2}$" लम्बे कपड़े के भींगे हुए टुकड़े से पेट को स्वच्छ करना), खण्ड योग (अर्थात् अपने शरीर के अवयवों को पृथक्-पृथक् कर उन्हें पुनः पूर्ववत् जोड़ना) और समाधि आदि भी सम्मिलित हैं। यदि कहा जाये कि वे हिन्दू थे तो आकृति से वे यवन-से प्रतीत होते थे। कोई भी यह निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता था कि वे हिन्दू थे या यवन। वे हिन्दुओं का रामनवमी उत्सव यथाविधि मनाते थे और साथ ही मुसलमानों का चन्दनोत्सव भी। वे उत्सव में दंगलों को प्रोत्साहन तथा विजेताओं को पर्याप्त पुरस्कार देते थे। गोकुल अष्टमी को वे 'गोपाल-काला' उत्सव भी बड़ी धूमधाम से मनाते थे। ईद के दिन वे मुसलमानों को मसजिद में नमाज पढ़ने के लिये आमंत्रित किया करते थे। एक समय मुहर्रम के अवसर पर मुसलमानों ने मसजिद में ताजिये बनाने तथा कुछ दिन वहाँ रखकर फिर जुलूस बनाकर गाँव से निकालने का कार्यक्रम रचा। श्री साईबाबा ने केवल चार दिन ताजियों को वहाँ रखने दिया और बिना किसी राग-द्वेष के पाँचवें दिन वहाँ से हटवा दिया।

यदि कहें कि वे यवन थे तो उनके कान (हिन्दुओं की रीति के अनुसार) छिदे हुए थे और यदि कहें कि वे हिन्दू थे तो वे सुन्ता कराने के पक्ष में थे। (नानासाहेब चाँदोरकर, जिन्होंने उनको बहुत समीप से देखा था, उन्होंने बतलाया कि उनकी सुन्नत नहीं हुई थी। साईलीला-पत्रिका श्री. बी.व्ही. देव द्वारा लिखित शीर्षक "बाबा यवन कीं

हिन्दू" पृष्ठ ५६२ देखो।) यदि कोई उन्हें हिन्दू घोषित करें तो वे सदा मसजिद में निवास करते थे और यदि यवन कहें तो वे सदा वहाँ धूनी प्रज्वलित रखते थे तथा अन्य कर्म, जो कि इस्लाम धर्म के विरुद्ध हैं, जैसे-चक्की पीसना, शंख तथा घंटानाद, होम आदिक कार्य करना, अन्नदान और अर्घ्य द्वारा पूजन आदि सदैव वहाँ चलते रहते थे।

यदि कोई कहे कि वे यवन थे तो कुलीन ब्राह्मण और अग्निहोत्री भी अपने नियमों का उल्लंघन कर सदा उनको साष्टांग नमस्कार किया करते थे। जो उनके स्वदेश का पता लगाने गये, उन्हें अपना प्रश्न ही विस्मृत हो गया और वे उनके दर्शनमात्र से मोहित हो गये। अस्तु इसका निर्णय कोई न कर सका कि यथार्थ में साईबाबा हिन्दू थे या यवन। इसमें आश्चर्य ही क्या है? जो अहं व इन्द्रियजन्य सुखों को तिलांजलि देकर ईश्वर की शरण में आ जाता है तथा जब उसे ईश्वर के साथ अभिन्नता प्राप्त हो जाती है, तब उसकी कोई जाति-पाँति नहीं रह जाती। इसी कोटि में श्री साईबाबा थे। वे जातियों और प्राणियों में किंचित् मात्र भी भेदभाव नहीं रखते थे। फकीरों के साथ वे आमिष और मछली का सेवन भी कर लेते थे। कुत्ते भी उनके भोजन-पात्र में मुँह डालकर स्वतंत्रतापूर्वक खाते थे, परन्तु उन्होंने कभी कोई भी आपत्ति नहीं की। ऐसा अपूर्व और अद्‌भुत श्रीसाईबाबा का अवतार था।

गत जन्मों के शुभ संस्कारों के परिणामस्वरूप मुझे भी उनके श्री चरणों के समीप बैठने और उनका सत्संग-लाभ उठाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मुझे जिस आनन्द व सुख का अनुभव हुआ, उसका वर्णन मैं किस प्रकार कर सकता हूँ? यथार्थ में बाबा अखण्ड सच्चिदानन्द थे। उनकी महानता और अद्वितीयता का बखान कौन कर सकता है? जिसने उनके श्रीचरण-कमलोंकी शरण ली, उसे साक्षात्कार की प्राप्ति हुई। अनेक संन्यासी, साधक और अन्य मुमुक्षु जन भी श्रीसाईबाबा के पास आया करते थे। बाबा भी सदैव उनके साथ चलते-फिरते, उठते-बैठते, उनसे वार्त्तालाप कर उनका चित्तरंजन किया करते थे। 'अल्लाह मालिक' सदैव उनके होठों पर था। वे कभी भी विवाद और मतभेद में नहीं पड़ते थे तथा सदा शान्त और स्थिर रहते थे। परन्तु कभी-कभी वे क्रोधित हो जाया करते थे। वे सदैव ही वेदान्त की शिक्षा दिया करते थे। कोई भी अन्त तक न जान सका कि श्री साईबाबा वास्तव में कौन थे? अमीर और गरीब दोनों उनके लिए एक समान थे। वे लोगों के गुह्य व्यापार को पूर्णतया जानते थे और जब वे गुह्य रहस्य स्पष्ट करते तो सब विस्मित हो जाते थे। स्वयं ज्ञानावतार होकर भी वे सदैव अज्ञानता का प्रदर्शन किया करते थे। उन्हें आदरसत्कार से सदैव अरुचि थी।

इस प्रकार का श्री साईबाबा का वैशिष्ट्य था। थे तो वे शरीरधारी, परन्तु कर्मों से उनकी ईश्वरीयता स्पष्ट झलकती थी। शिरडी के सकल नर-नारी उन्हें परब्रह्म ही मानते थे।

विशेषः –

(१) श्री साईबाबा के एक अंतरंग भक्त म्हालसापति, जो कि बाबा के साथ मसजिद तथा चावड़ी में शयन करते थे, उन्हें बाबा ने बतलाया था कि "**मेरा जन्म पाथर्डी के एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। मेरे माता-पिता ने मुझे बाल्यावस्था में ही एक फकीर को सौंप दिया था।**" जब यह चर्चा चल रही थी, तभी पाथर्डी से कुछ लोग वहाँ आये तथा बाबा ने उनसे कुछ लोगों के सम्बन्ध में पूछताछ भी की। (२) श्रीमती काशीबाई कानेटकर (पूना की एक प्रसिद्ध विदुषी महिला) ने साईलीला-पत्रिका, भाग २ (सन् १९३४) के पृष्ठ ७९ पर अनुभव नं. ५ में प्रकाशित किया है कि बाबा के चमत्कारों को सुनकर हम लोग अपनी ब्रह्मवादी संस्था की पद्धति के अनुसार विवेचन कर रहे थे। विवाद का विषय था कि श्री साईबाबा ब्रह्मवादी हैं या वाममार्गी। कालान्तर में जब मैं शिरडी को गई तो मुझे इस सम्बन्ध में अनेक विचार आ रहे थे। जैसे ही मैंने मसजिद की सीढ़ियों पर पैर रखा कि बाबा उठ कर सामने आ गये और अपने हृदय की ओर संकेत कर, मेरी ओर घूरते हुये क्रोधित हो बोले– "**यह ब्राह्मण है, शुद्ध ब्राह्मण।** इसे वाम मार्ग से क्या प्रयोजन? यहाँ कोई भी यवन प्रवेश करने का दुस्साहस नहीं कर सकता और न ही वह करे।" पुनः अपने हृदय की ओर इंगित करते हुये बोले, "**यह ब्राह्मण लाखों मनुष्यों का पथप्रदर्शन कर सकता है और उनको अप्राप्य वस्तु की प्राप्ति करा सकता है। यह ब्राह्मण की मसजिद है। मैं यहाँ किसी वाममार्गी की छाया भी न पड़ने दूँगा।**"

बाबा की प्रकृति

मैं मूर्ख जो हूँ, श्री साईबाबा की अद्‌भुत लीलाओं का वर्णन नहीं कर सकता। शिरडी के प्रायः समस्त मंदिरों का उन्होंने जीर्णोद्धार किया। श्री तात्या पाटील के द्वारा शनि, गणपति, शंकर, पार्वती, ग्राम्यदेवता और हनुमानजी आदि के मंदिर ठीक करवाये। उनका दान भी विलक्षण था। दक्षिणा के रूप में जो धन एकत्रित होता था, उसमें से वे किसी को बीस रुपये, किसी को पंद्रह रुपये या किसी को पचास रुपये, इसी प्रकार प्रतिदिन स्वच्छन्दतापूर्वक वितरण कर देते थे। प्राप्तिकर्त्ता उसे शुद्ध दान समझता था। बाबा की भी सदैव यही इच्छा थी कि उसका उपयुक्त रीति से व्यय किया जाय।

बाबा के दर्शन से भक्तों को अनेक प्रकार का लाभ पहुँचता था। अनेकों निष्कपट और स्वस्थ बन गये; दुष्टात्मा पुण्यात्मा में परिणत हो गये; अनेकों कुष्ठ रोग से मुक्त हो गए और अनेकों को मनोवांछित फल की प्राप्ति हो गई। बिना कोई रस या औषधि सेवन किये, बहुत से अंधों को पुनः दृष्टि प्राप्त हो गई, पंगुओं की पंगुता नष्ट हो गई। कोई भी उनकी महानता का अन्त न पा सका। उनकी कीर्त्ति दूर दूर तक फैलती गई और भिन्न-भिन्न स्थानों से यात्रियों के झुंड के झुंड शिरडी आने लगे। बाबा सदा धूनी के पास ही आसन जमाये रहते और वहीं विश्राम किया करते थे। वे कभी स्नान करते और कभी स्नान किये बिना ही समाधि में लीन रहते थे। वे सिर पर एक छोटी सी साफी, कमर में एक धोती और तन ढँकने के लिये एक अंगरखा धारण करते थे। प्रारम्भ से ही उनकी वेशभूषा इसी प्रकार थी। अपने जीवनकाल के पूर्वार्द्ध में वे गाँव में चिकित्साकार्य भी किया करते थे। रोगियों का निदान कर उन्हें औषधि भी देते थे और उनके हाथ में अपरिमित यश था। इस कारण से वे अल्प काल में ही योग्य चिकित्सक विख्यात हो गये। यहाँ केवल एक ही घटना का उल्लेख किया जाता है, जो बड़ी विचित्र सी है।

विलक्षण नेत्र चिकित्सा

एक भक्त की आँखें बहुत लाल हो गई थीं। उन पर सूजन भी आ गई थी। शिरडी सरीखे छोटे ग्राम में डाक्टर कहाँ? तब भक्तगण ने रोगी को बाबा के समक्ष उपस्थित किया। इस प्रकार की पीड़ा में डॉक्टर प्रायः लेप, मरहम, अंजन, गाय का दूध तथा कपूरयुक्त औषधियों को प्रयोग में लाते हैं। पर बाबा की औषधि तो सर्वथा ही भिन्न थी। उन्होंने भिलावाँ पीस कर उसकी दो गोलियाँ बनायीं और रोगी के नेत्रों में एक-एक गोली चिपका कर कपड़े की पट्टी से आँखें बाँध दीं। दूसरे दिन पट्टी हटाकर नेत्रों के ऊपर जल के छींटे छोड़े गये। सूजन कम हो गई और नेत्र प्रायः नीरोग हो गये। नेत्र शरीर का एक अति सुकोमल अंग है, परन्तु बाबा की औषधि से कोई हानि नहीं पहुँची, वरन् नेत्रों की व्याधि दूर हो गई। इस प्रकार अनेक रोगी नीरोग हो गये। यह घटना तो केवल उदाहरणस्वरूप ही यहाँ लिखी गई है।

बाबा की यौगिक क्रियाएँ

बाबा को समस्त यौगिक प्रयोग और क्रियाएँ ज्ञात थीं। उनमें से केवल दो का ही उल्लेख यहाँ किया जाता हैः–

(१) **धौति क्रिया** (आँतें स्वच्छ करने की क्रिया) प्रति तीसरे दिन बाबा मसजिद से पर्याप्त दूरी पर, एक वट वृक्ष के नीचे किया करते थे। एक अवसर पर लोगों ने देखा कि उन्होंने अपनी आँतों को उदर के बाहर निकालकर उन्हें चारों ओर से स्वच्छ किया और समीप के वृक्ष पर सूखने के लिये रख दिया। शिरडी में इस घटना की पुष्टि करने वाले लोग अभी भी जीवित हैं। उन्होंने इस सत्य की परीक्षा भी की थी।

साधारण धौति क्रिया एक ३" चौड़े व २२$^1/_2$ फुट लम्बे गीले कपड़े के टुकड़े से की जाती है। इस कपड़े को मुँह के द्वारा उदर में उतार लिया जाता है तथा उसे लगभग आधा घंटे तक रखे रहते हैं, ताकि उसका पूरा-पूरा प्रभाव हो जावे। तत्पश्चात् उसे बाहर निकाल लेते हैं। पर बाबा की तो यह धौति क्रिया सर्वथा विचित्र और असाधारण ही थी।

(२) **खण्डयोग** - एक समय बाबा ने अपने शरीर के अवयव पृथक्-पृथक् कर मसजिद के भिन्न-भिन्न स्थानों में बिखेर दिये। अकस्मात् उसी दिन एक महाशय मसजिद में पधारे और अंगों को इस प्रकार यहाँ-वहाँ बिखरा देखकर बहुत ही भयभीत हुए। पहले उनकी इच्छा हुई कि लौटकर ग्राम अधिकारी के पास यह सूचना भिजवा देनी चाहिये कि किसी ने बाबा का खून कर उनके टुकडे-टुकड़े कर दिये हैं। परन्तु सूचना देने वाला ही पहले पकड़ा जाता है, यह सोचकर वे मौन रहे। दूसरे दिन जब वे मसजिद में गये तो बाबा को पूर्ववत् हृष्ट पुष्ट और स्वस्थ देखकर उन्हें बड़ा विस्मय हुआ। उन्हें ऐसा लगा कि पिछले दिन जो दृश्य देखा था, वह कहीं स्वप्न तो नहीं था?

बाबा बाल्याकाल से ही यौगिक क्रियायें किया करते थे और उन्हें जो अवस्था प्राप्त हो चुकी थी, उसका सत्य ज्ञान किसी को भी नहीं था। चिकित्सा के नाम से उन्होंने कभी किसी से एक पैसा भी स्वीकार नहीं किया। अपने उत्तम लोकप्रिय गुणों के कारण उनकी कीर्त्ति दूर-दूर तक फैल गई। उन्होंने अनेक निर्धनों और रोगियों को स्वास्थ्य प्रदान किया। इस प्रसिद्ध डॉक्टरों के डॉक्टर (मसीहों के मसीहा) ने कभी अपने स्वार्थ की चिन्ता न कर अनेक विघ्नों का सामना किया तथा स्वयं असहनीय वेदना और कष्ट सहन कर सदैव दूसरों की भलाई की और उन्हें विपत्तियों में सहायता पहुँचाई। वे सदा परकल्याणार्थ चिंतित रहते थे। ऐसी ही एक घटना नीचे लिखी जाती है, जो उनकी सर्वव्यापकता तथा महान् दयालुता की द्योतक है।

बाबा की सर्वव्यापकता और दयालुता

सन् १९१० में बाबा दीवाली के शुभ अवसर पर धूनी के समीप बैठे हुए अग्नि ताप

रहे थे तथा साथ ही धूनी में लकड़ी भी डालते जा रहे थे। धूनी प्रचण्डता से प्रज्वलित थी। कुछ समय पश्चात् उन्होंने लकड़ियाँ डालने के बदले अपना हाथ धूनी में डाल दिया। हाथ बुरी तरह से झुलस गया। नौकर माधव तथा माधवराव देशपांडे ने बाबा को धूनी में हाथ डालते देखकर तुरन्त दौड़कर उन्हें बलपूर्वक पीछे खींच लिया।

माधवराव ने बाबा से कहा, "देवा! आपने ऐसा क्यों किया?" बाबा सावधान होकर कहने लगे, "यहाँ से कुछ दूरी पर एक लुहारिन जब भट्ठी धौंक रही थी, उसी समय उसके पति ने उसे बुलाया। कमर से बँधे हुए शिशु का ध्यान छोड़ वह शीघ्रता से वहाँ दौड़कर गई। अभाग्यवश शिशु फिसल कर भट्ठी में गिर पड़ा। मैंने तुरन्त भट्ठी में हाथ डालकर शिशु के प्राण बचा लिये हैं। मुझे अपना हाथ जल जाने का कोई दुःख नहीं है, परन्तु मुझे हर्ष है कि एक मासूम शिशु के प्राण बच गये।"

कुष्ठ रोगी की सेवा

माधवराव देशपांडे के द्वारा बाबा का हाथ जल जाने का समाचार पाकर श्री नानासाहेब चाँदोरकर, बम्बई के सुप्रसिद्ध डॉक्टर श्री परमानंद के साथ दवाइयाँ, लेप, लिंट तथा पट्टियाँ आदि साथ लेकर शीघ्रता से शिरडी को आये। उन्होंने बाबा से डॉक्टर परमानन्द को हाथ की परीक्षा करने और जले हुए स्थान में दवा लगाने की अनुमति माँगी। यह प्रार्थना अस्वीकृत हो गई। हाथ जल जाने के पश्चात् एक कुष्ठ-पीड़ित भक्त भागोजी सिंदिया उनके हाथ पर सदैव पट्टी बाँधते थे। उनका कार्य था प्रतिदिन जले हुए स्थान पर घी मलना और उसके ऊपर एक पत्ता रखकर पट्टियों से उसे पुनः पूर्ववत् कस कर बाँध देना। घाव शीघ्र भर जाये, इसके लिये नानासाहेब चाँदोरकर ने पट्टी छोड़ने तथा डॉ. परमानन्द से जाँच व चिकित्सा कराने का बाबा से बारंबार अनुरोध किया। यहाँ तक कि डॉ.परमानन्द ने भी अनेक बार प्रार्थना की, परन्तु बाबा ने यह कहते हुए टाल दिया कि केवल अल्लाह ही मेरा डॉक्टर है। उन्होंने हाथ की परीक्षा करवाना अस्वीकार कर दिया। डॉ. परमानन्द की दवाइयाँ शिरडी के वायुमंडल में न खुल सकीं और न उनका उपयोग ही हो सका। फिर भी डॉक्टर साहेब का परम भाग्य था, जो उन्हें बाबा के श्रीदर्शन का लाभ हुआ। भागोजी को दवा लगाने की अनुमति मिल गई। कुछ दिनों के उपरांत जब घाव भर गया, तब सब भक्त सुखी हो गये, परन्तु यह किसी को भी ज्ञात न हो सका कि कुछ पीड़ा अवशेष रही थी या नहीं। प्रतिदिन प्रातःकाल वही क्रम-घृत से हाथ का मर्दन और पुनः कस कर पट्टी बाँधना-श्रीसाईबाबा की समाधि पर्यन्त यह कार्य इसी प्रकार चलता रहा। श्रीसाईबाबा

सदृश पूर्ण सिद्ध को, यथार्थ में इस चिकित्सा की भी कोई आवश्यकता नहीं थी, परन्तु भक्तों के प्रेमवश, उन्होंने भागोजी की यह सेवा (अर्थात् उपासना) निर्विघ्न स्वीकार की। जब बाबा लेण्डी को जाते तो भागोजी छाता लेकर उनके साथ ही जाते थे। प्रतिदिन प्रातः काल् जब बाबा धूनी के पास आसन पर विराजते, तब भागोजी वहाँ पहले से ही उपस्थित रहकर अपना कार्य प्रारम्भ कर देते थे। भागोजी ने पिछले जन्म में अनेक पाप-कर्म किये थे। इस कारण वे कुष्ठ रोग से पीड़ित थे। उनकी उँगलियाँ गल चुकी थीं और शरीर पीप आदि से भरा हुआ था, जिससे दुर्गन्ध भी आती थी। यद्यपि बाह्य दृष्टि से वे दुर्भागी प्रतीत होते थे, परंतु बाबा का प्रधान सेवक होनेके नाते, यथार्थ में वे ही अधिक भाग्यशाली तथा सुखी थे। उन्हें बाबा के सान्निध्य का पूर्ण लाभ प्राप्त हुआ।

बालक खापर्डे को प्लेग

अब मैं बाबा की एक दूसरी अद्‌भुत लीला का वर्णन करूँगा। श्रीमती खापर्डे (अमरावती के श्री दादासाहेब खापर्डे की धर्मपत्नी) अपने छोटे पुत्र के साथ कई दिनों से शिरडी में थीं। पुत्र तीव्र ज्वर से पीड़ित था, पश्चात् उसे प्लेग की गिल्टी (गाँठ) भी निकल आई। श्रीमती खापर्डे भयभीत हो बहुत घबराने लगीं और अमरावती लौट जाने का विचार करने लगीं। संध्या-समय जब बाबा वायुसेवन के लिए वाड़े (अब जो 'समाधि मंदिर' कहा जाता है) के पास से जा रहे थे, तब उन्होंने उनसे लौटने की अनुमति माँगी तथा कम्पित स्वर में कहने लगीं कि मेरा प्रिय पुत्र प्लेग से ग्रस्त हो गया है, अतः अब मैं घर लौटना चाहती हूँ। प्रेमपूर्वक उनका समाधान करते हुए बाबा ने कहा, "आकाश में बहुत बादल छाये हुए हैं। उनके हटते ही आकाश पूर्ववत् स्वच्छ हो जायगा।" ऐसा कहते हुए उन्होंने कमर तक अपनी कफनी ऊपर उठाई और वहाँ उपस्थित सभी लोगों को चार अंडों के बराबर गिल्टियाँ दिखा कर कहा, "देखो, मुझे अपने भक्तों के लिये कितना कष्ट उठाना पड़ता है। उनके कष्ट मेरे हैं।" यह विचित्र और असाधारण लीला देखकर लोगों को विश्वास हो गया कि सन्तों को अपने भक्तों के लिये किस प्रकार कष्ट सहन करने पड़ते हैं। संतों का हृदय मोम से भी नरम तथा अन्तर्बाह्य मक्खन जैसा कोमल होता है। वे अकारण ही भक्तों से प्रेम करते और उन्हें अपना निजी सम्बंधी समझते हैं।

पंढरपुर-गमन और निवास

बाबा अपने भक्तों से कितना प्रेम करते और किस प्रकार उनकी समस्त इच्छाओं तथा

समाचारों को पहले से ही जान लेते थे, इसका वर्णन कर मैं यह अध्याय समाप्त करूँगा।

नानासाहेब चाँदोरकर बाबा के परम भक्त थे। वे खानदेश में नंदूरबार के मामलतदार थे। उनका पंढरपुर को स्थानांतरण हो गया और श्रीसाईबाबा की भक्ति उन्हें सफल हो गई, क्योंकि उन्हें पंढरपुर जो भूवैकुण्ठ (पृथ्वी का स्वर्ग) सदृश ही समझा जाता है, उसमें रहने का अवसर प्राप्त हो गया। नानासाहेब को शीघ्र ही कार्यभार सम्हालना था, इसलिये वे किसी को पूर्व पत्र या सूचना दिये बिना ही शीघ्रता से शिरडी को रवाना हो गये। वे अपने पंढरपुर (शिरडी) में अचानक ही पहुँचकर अपने विठोबा (बाबा) को नमस्कार कर फिर आगे प्रस्थान करना चाहते थे। नानासाहेब के आगमन की किसी को भी सूचना न थी। परन्तु बाबा से क्या छिपा था? वे तो सर्वज्ञ थे। जैसे ही नानासाहेब नीमगाँव पहुँचे (जो शिरडी से कुछ ही दूरी पर है), बाबा पास बैठे हुए म्हालसापति, अप्पा शिंदे और काशीराम से वार्त्तालाप कर रहे थे। उसी समय मसजिद में स्तब्धता छा गई और बाबा ने अचानक ही कहा, "चलो, चारों मिलकर भजन करें। पंढरपुर के द्वार खुले हुए हैं-" यह भजन प्रेमपूर्वक गावें। ("पंढरपुरला जायाचें जायाचें तिथेंच मजला राह्याचें। तिथेच मजला राह्याचें, घर तें माझ्या रायांचे ॥) सब मिलकर गाने लगे। (भावार्थ-"मुझे पंढरपुर जाकर वहीं रहना है, क्योंकि वह मेरे स्वामी (ईश्वर) का घर है।") बाबा गाते जाते और भक्तगण उसे दुहराते जाते थे। कुछ समय में नानासाहेब ने वहाँ सहकुटुम्ब पहुँचकर बाबा को प्रणाम किया। उन्होंने बाबा से पंढरपुर को साथ पधारने तथा वहाँ निवास करने की प्रार्थना की। पाठको! अब इस प्रार्थना की आवश्यकता ही कहाँ थी? भक्तगण ने नानासाहेब को बतलाया कि बाबा पंढरपुर निवास के भाव में पहले ही से हैं। यह सुनकर नानासाहेब द्रवित हो श्री-चरणों पर गिर पड़े और बाबा की आज्ञा, उदी तथा आशीर्वाद प्राप्त कर वे पंढरपुर को रवाना हो गये।

बाबा की कथायें अनन्त हैं। अन्य विषय जैसे - मानव जन्म का महत्व, बाबा का भिक्षा-वृत्ति पर निर्वाह, बायजाबाई की सेवा तथा अन्य कथाओं को अगले अध्याय के लिये शेष रखकर अब मुझे यहाँ विश्राम करना चाहिये।

॥ श्री सद्‌गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु ॥

अध्याय – ८

मानव जन्म का महत्त्व, श्रीसाईबाबा की भिक्षावृत्ति, बायजाबाई की सेवा-शुश्रूषा, श्रीसाईबाबा का शयनकक्ष, खुशालचन्द पर प्रेम।

जैसा कि गत अध्याय में कहा गया है, अब श्री हेमाडपन्त मानव जन्म की महत्ता को विस्तृत रूप में समझाते हैं। श्रीसाईबाबा किस प्रकार भिक्षा उपार्जन करते थे, बायजाबाई उनकी किस प्रकार सेवा-शुश्रूषा करती थीं, वे मसजिद में तात्या कोते और म्हालसापति के साथ किस प्रकार शयन करते तथा खुशालचन्द पर उनका कैसा स्नेह था, इसका आगे वर्णन किया जायेगा।

मानव जन्म का महत्त्व

इस विचित्र संसार में ईश्वर ने लाखों प्राणियों (हिन्दू शास्त्र के अनुसार ८४ लाख योनियों) को उत्पन्न किया है (जिनमें देव, दानव, गन्धर्व, जीवजन्तु और मनुष्य आदि सम्मिलित हैं), जो स्वर्ग, नरक, पृथ्वी, समुद्र तथा आकाश में निवास करते और भिन्न-भिन्न धर्मों का पालन करते हैं। इन प्राणियों में **जिनका पुण्य प्रबल है, वे स्वर्ग में निवास करते और अपने सत्कृत्यों का फल भोगते हैं। पुण्य के क्षीण होते ही वे फिर निम्न स्तर में आ जाते हैं और वे प्राणी, जिन्होंने पाप या दुष्कर्म किये हैं, नरक को जाते और अपने कुकर्मों का फल भोगते हैं। जब उनके पाप और पुण्यों का समन्वय हो जाता है, तब उन्हें मानव-जन्म और मोक्ष प्राप्त करने का अवसर प्राप्त होता है। जब पाप और पुण्य दोनों नष्ट हो जाते हैं, तब वे मुक्त हो जाते हैं।** अपने कर्म तथा प्रारब्ध के अनुसार ही आत्माएँ जन्म लेतीं या काया-प्रवेश करती हैं।

मनुष्य शरीर अनमोल

यह सत्य है कि समस्त प्राणियों में चार बातें एक समान हैं – आहार, निद्रा, भय

और मैथुन। मानव प्राणी को ज्ञान एक विशेष देन है, जिसकी सहायता से ही वह ईश्वर-दर्शन कर सकता है, जो अन्य किसी योनि में सम्भव नहीं। यही कारण है कि देवता भी मानव योनि से ईर्ष्या करते हैं तथा पृथ्वी पर मानव-जन्म धारण करने के हेतु सदैव लालायित रहते हैं, जिससे उन्हें अंत में मुक्ति प्राप्त हो।

किसी-किसी का ऐसा भी मत है कि मानव-शरीर अति दोषयुक्त है। यह कृमि, मज्जा और कफ से परिपूर्ण, क्षण-भंगुर, रोग-ग्रस्त तथा नश्वर है। इसमें कोई संदेह नहीं कि यह कथन अंशतः सत्य है। परन्तु इतना दोषपूर्ण होते हुए भी मानव-शरीर का मूल्य अधिक है, क्योंकि ज्ञान की प्राप्ति केवल इसी योनि में संभव है। मानव शरीर प्राप्त होने पर ही तो ज्ञात होता है कि यह शरीर नश्वर और विश्व परिवर्त्तनशील है और इस प्रकार धारणा कर इन्द्रिय-जन्य विषयों को तिलांजलि देकर तथा सत्-असत् का विवेक कर ईश्वर-साक्षात्कार किया जा सकता है। इसलिये यदि हम शरीर को तुच्छ और अपवित्र समझ कर उसकी उपेक्षा करें तो हम ईश्वर दर्शन के अवसर से वंचित रह जायेंगे। यदि हम उसे मूल्यवान समझ कर उसका मोह करेंगे तो हम इन्द्रिय-सुखों की ओर प्रवृत्त हो जायेंगे और तब हमारा पतन भी सुनिश्चित ही है।

इसलिये उचित मार्ग, जिसका अवलम्बन करना चाहिये, यह है कि न तो देह की उपेक्षा ही करो और न ही उसमें आसक्ति रखो। केवल इतना ही ध्यान रहे कि किसी घुड़सवार का अपनी यात्रा में अपने घोड़े पर तब तक ही मोह रहता है, जब तक वह अपने निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच कर लौट न आये।

इसलिये ईश्वर-दर्शन या आत्मसाक्षात्कार के निमित्त शरीर को सदा ही लगाये रखना चाहिये, जो जीवन का मुख्य ध्येय है। ऐसा कहा जाता है कि अनेक प्राणियों की उत्पत्ति करने के पश्चात् भी ईश्वर को संतोष नहीं हुआ; कारण यह है कि कोई भी प्राणी उसकी अलौकिक रचना और सृष्टि को समझने में समर्थ न हो सका और इसी कारण उसने एक विशेष प्राणी अर्थात् मानव जाति की उत्पत्ति की और उसे ज्ञान की विशेष सुविधा प्रदान की। जब ईश्वर ने देखा कि मानव उसकी लीला, अद्‌भुत रचनाओं तथा ज्ञान को समझने के योग्य है, तब उन्हें अति हर्ष एवं सन्तोष हुआ। (भागवत स्कंध ११-९-२८ के अनुसार)। इसलिये मानव जन्म प्राप्त होना बड़े सौभाग्य का सूचक है। उच्च ब्राह्मण कुल में जन्म लेना तो परम सौभाग्य का लक्षण है, परन्तु श्रीसाई-चरणाम्बुजों में प्रीति और उनकी शरणागति प्राप्त होना इन सभी में अति श्रेष्ठ है।

मानव का प्रयत्न

इस संसार में मानव-जन्म अति दुर्लभ है। हर मनुष्य की मृत्यु तो निश्चित ही है और वह किसी भी क्षण उसका आलिंगन कर सकती है। ऐसी ही धारणा कर हमें अपने ध्येय की प्राप्ति में सदैव तत्पर रहना चाहिये। जिस प्रकार खोये हुये राजकुमार की खोज में राजा प्रत्येक सम्भव उपाय प्रयोग में लाता है, इसी प्रकार किंचित् मात्र भी विलंब न कर हमें अपने अभीष्ट की सिद्धि के हेतु शीघ्रता करनी ही सर्वथा उचित है। अतः पूर्ण लगन और उत्सुकतापूर्वक अपने ध्येय, आलस्य और निद्रा को त्याग कर हमें ईश्वर का सर्वदा ध्यान रखना चाहिये। यदि हम ऐसा न कर सकें तो हमें पशुओं के स्तर पर ही अपने को समझना पड़ेगा।

कैसे प्रवृत्त होना?

अधिक सफलतापूर्वक और सुलभ साक्षात्कार को प्राप्त करने का एकमात्र उपाय है- किसी योग्य संत या सद्गुरु के चरणों की शीतल छाया में आश्रय लेना, जिसे कि ईश्वर-साक्षात्कार हो चुका हो। जो लाभ धार्मिक व्याख्यानों के श्रवण करने और धार्मिक ग्रन्थों के अध्ययन करने से प्राप्त नहीं हो सकता, वह इन उच्च आत्मज्ञानियों की संगति से सहज ही में प्राप्त हो जाता है। जो प्रकाश हमें सूर्य से प्राप्त होता है, वैसा विश्व के समस्त तारे भी मिल जायें तो भी नहीं दे सकते। इसी प्रकार जिस आध्यात्मिक ज्ञान की उपलब्धि हमें सद्गुरु की कृपा से हो सकती है, वह ग्रन्थों और उपदेशों से किसी प्रकार संभव नहीं है। उनकी प्रत्येक गतिविधि, मृदु-भाषण, गुह्य उपदेश, क्षमाशीलता, स्थिरता, वैराग्य, दान और परोपकारिता, मानव शरीर का नियंत्रण, अहंकार-शून्यता आदि गुण, जिस प्रकार भी वे इस पवित्र मंगल-विभूति द्वारा व्यवहार में आते हैं, सत्संग द्वारा भक्त लोगों को उसके प्रत्यक्ष दर्शन होते हैं। इससे मस्तिष्क की जागृति होती तथा उत्तरोत्तर आध्यात्मिक उन्नति होती रहती है। श्री साईबाबा इसी प्रकार के एक संत या सद्गुरु थे। यद्यपि वे बाह्यरूप से एक फकीर का अभिनय करते थे, **परन्तु वे सदैव आत्मलीन रहते थे। वे समस्त प्राणियों से प्रेम करते और उनमें भगवत्-दर्शन का अनुभव करते थे।** सुखों का उनको कोई आकर्षण न था और न वे आपत्तियों से विचलित होते थे। उनके लिये अमीर और फकीर दोनों ही एक समान थे। जिनकी केवल कृपा से भिखारी भी राजा बन सकता था, वे शिरडी में द्वार-द्वार घूम कर भिक्षा उपार्जन किया करते थे। यह कार्य वे इस प्रकार करते थे-

बाबा की भिक्षावृत्ति

शिरडीवासियों के भाग्य की कौन कल्पना कर सकता है कि जिनके द्वारपर परब्रह्म भिक्षुक के रूप में खड़े रहकर पुकार करते थे, "ओ माई। एक रोटी का टुकड़ा मिले" और उसे प्राप्त करने के लिये अपना हाथ फैलाते थे। एक हाथ में वे सदा 'टमरेल' लिये रहते तथा दूसरे में एक 'झोली'। कुछ गृहों में तो वे प्रतिदिन ही जाते और किसी-किसी के द्वारपर केवल फेरी ही लगाते थे। वे साग, दूध या छाँछ आदि पदार्थ तो टिनपाट में लेते तथा भात व रोटी आदि अन्य सूखी वस्तुएँ झोली में डाल लेते थे। बाबा की जिह्वा को कोई स्वाद-रुचि न थी, क्योंकि उन्होंने उसे अपने वश में कर लिया था। इसलिये वे भिन्न-भिन्न वस्तुओं के स्वाद की चिन्ता क्यों करते? जो कुछ भी भिक्षा में उन्हें मिल जाता, उसे ही वे मिश्रित कर सन्तोषपूर्वक ग्रहण करते थे।

अमुक पदार्थ स्वादिष्ट है या नहीं, बाबा ने इस ओर कभी ध्यान ही न दिया, मानो उनकी जिह्वा में स्वाद बोध ही न हो। वे केवल मध्याह्न तक ही भिक्षा-उपार्जन करते थे। यह कार्य बहुत अनियमित था। किसी दिन तो वे छोटी सी फेरी ही लगाते तथा किसी दिन बारह बजे तक। वे एकत्रित भोजन एक कुण्डी में डाल देते, जहाँ कुत्ते, बिल्लियाँ, कौवे आदि स्वतंत्रतापूर्वक भोजन करते थे। बाबा ने उन्हें कभी नहीं भगाया। एक स्त्री भी, जो मसजिद में झाड़ू लगाया करती थी, रोटी के दस-बारह टुकड़े उठाकर अपने घर ले जाती थी, परन्तु किसी ने कभी उसे नहीं रोका। जिन्होंने स्वप्न में भी बिल्लियों और कुत्तों को कभी दुतकार कर नहीं भगाया, वे भला निस्सहाय गरीबों को रोटी के कुछ टुकड़ों को उठाने से क्योंकर रोकते? ऐसे महान् पुरुष का जीवन धन्य है। शिरडीवासी तो पहलेपहल उन्हें केवल एक 'पागल' ही समझते थे और वे शिरडी में इसी नाम से विख्यात भी हो गये थे। जो भिक्षा के कुछ टुकड़ों पर निर्वाह करता हो, भला उसका कोई आदर कैसे करता? परंतु ये तो उदार हृदय, त्यागी और धर्मात्मा थे। यद्यपि वे बाहर से चंचल और अशान्त प्रतीत होते थे, परन्तु अन्तःकरण से दृढ़ और गंभीर थे। उनका मार्ग गहन तथा गूढ़ था। फिर भी ग्राम में कुछ ऐसे श्रद्धावान् और सौभाग्यशाली व्यक्ति थे, जिन्होंने उन्हें पहिचान कर एक महान् पुरुष माना। ऐसी ही एक घटना नीचे दी जाती है।

बायजाबाई की सेवा

तात्या कोते की माता, जिनका नाम बायजाबाई था, दोपहर के समय एक टोकरी में रोटी और भाजी लेकर जंगल को जाया करती थीं। वे जंगल में कोसों दूर जातीं और

बाबा को ढूँढ़कर उनके चरण पकड़ती थीं। बाबा तो शान्त और ध्यानमग्न बैठे रहते थे। वे एक पत्तल बिछाकर उस पर सब प्रकार के व्यंजनादि जैसे-रोटी, साग आदि परोसतीं और बाबा से भोजन कर लेने के लिये आग्रह करतीं। उनकी सेवा तथा श्रद्धा की रीति बड़ी ही विलक्षण थी – प्रतिदिन दोपहर को जंगल में बाबा को ढूँढ़ना और भोजन के लिये आग्रह करना। उनकी इस सेवा और उपासना की स्मृति बाबा को अपने अन्तिम क्षणों तक बनी रही। उनकी सेवा का ध्यान कर बाबा ने उनके पुत्र को बहुत लाभ पहुँचाया। माँ और बेटे दोनों की ही फकीर पर दृढ़ निष्ठा थी। उन्होंने बाबा को सदैव ईश्वर के समान ही पूजा। बाबा उनसे कभी-कभी कहा करते थे कि "फकीरी ही सच्ची अमीरी है। उसका कोई अन्त नहीं। जिसे अमीरी के नाम से पुकारा जाता है, वह शीघ्र ही लुप्त हो जाने वाली है।" कुछ वर्षों के अनन्तर बाबा ने जंगल में विचरना त्याग दिया। वे गाँव में ही रहने और मसजिद में ही भोजन करने लगे। इस कारण बायजाबाई को भी उन्हें जंगल में ढूँढ़ने के कष्ट से छुटकारा मिल गया।

तीनों का शयन-कक्ष

वे सन्त पुरुष धन्य हैं, जिनके हृदय में भगवान वासुदेव सदैव वास करते हैं। वे भक्त भी भाग्यशाली हैं, जिन्हें उनका सान्निध्य प्राप्त होता है। ऐसे ही दो भाग्यशाली भक्त थे (१) तात्या कोते पाटील और (२) भगत म्हालसापति। दोनों ने बाबा के सान्निध्य का सदैव पूर्ण लाभ उठाया। बाबा दोनों पर एक समान प्रेम रखते थे। ये तीनों महानुभाव मसजिद में अपने सिर पूर्व, पश्चिम तथा उत्तर की ओर करते और केन्द्र में एक दूसरे के पैर से पैर मिलाकर शयन किया करते थे। बिस्तर में लेटे-लेटे ही वे आधी रात तक प्रेमपूर्वक वार्त्तालाप और इधर-उधर की चर्चायें किया करते थे। यदि किसी को भी निद्रा आने लगती तो दूसरा उसे जगा देता था। यदि तात्या खुर्राटे लेने लगते तो बाबा शीघ्र ही उठकर उसे हिलाते और सिर पकड़ कर जोर से दबाते थे। यदि कहीं वह म्हालसापति हुए तो उन्हें भी अपनी ओर खींचते और पैरों पर धक्का देकर पीठ थपथपाते थे। इस प्रकार तात्या ने १४ वर्षों तक अपने माता-पिता को गृह ही पर छोड़कर बाबा के प्रेमवश मसजिद में निवास किया। कैसे सुहाने दिन थे वे? उनकी क्या कभी विस्मृति हो सकती है? उस प्रेम का क्या कहना? बाबा की कृपा का मूल्य कैसे आँका जा सकता था? पिता की मृत्यु होने के पश्चात् तात्या पर घरबार की जिम्मेदारी आ पड़ी, इसलिये वे अपने घर जाकर रहने लगे।

राहाता निवासी खुशालचन्द

शिरडी के गणपत तात्या कोते को बाबा बहुत ही चाहते थे। वे राहाता के मारवाड़ी सेठ श्री. चन्द्रभान को भी बहुत प्यार करते थे। सेठजी का देहान्त होने के उपरांत बाबा उसके भतीजे खुशालचन्दको भी अधिक प्रेम करते थे। वे उनके कल्याण की दिनरात फिक्र किया करते थे। कभी बैलगाड़ी में तो कभी ताँगे में वे अपने अंतरंग मित्रों के साथ राहाता को जाया करते थे। ग्रामवासी बाबा के गाँव के फाटक पर आते ही उनका अपूर्व स्वागत करते और उन्हें प्रणाम कर बड़ी धूमधाम से गाँव में ले जाते थे। खुशालचन्द बाबा को अपने घर ले जाते और कोमल आसन पर बिठाकर उत्तम सुस्वादु भोजन कराते और आनन्द तथा प्रसन्न चित्त से कुछ काल तक वार्त्तालाप किया करते थे। फिर बाबा सबको आनंदित कर और आशीर्वाद देकर शिरडी वापिस लौट आते थे।

एक ओर राहाता (दक्षिण में) तथा दूसरी ओर नीमगाँव (उत्तर में) था। इन दोनों ग्रामों के मध्य में शिरडी स्थित है। बाबा अपने जीवन काल में कभी भी इन सीमाओं के पार नहीं गये। उन्होंने कभी रेलगाड़ी न्हीं देखी और न कभी उसमें प्रवास ही किया, परन्तु फिर भी उन्हें सब गाड़ियों के आवागमन का समय ठीक-ठीक ज्ञात रहता था। जो भक्तगण बाबा से लौटने की अनुमति माँगते और जो आदेशानुकूल चलते, वे कुशलपूर्वक घर पहुँच जाते थे। परन्तु इसके विपरीत जो अवज्ञा करते, उन्हें दुर्भाग्य व दुर्घटनाओं का सामना करना पड़ता था। इस विषय से सम्बन्धित घटनाओं और अन्य विषयों का अगले अध्याय में विस्तारपूर्वक वर्णन किया जायेगा।

विशेष

इस अध्याय के नीचे दी हुई टिप्पणी बाबा के खुशालचन्द पर प्रेम के संबंध में है। किस प्रकार उन्होंने काकासाहेब दीक्षित को राहाता जाकर खुशालचन्द को लिवा लाने को कहा और उसी दोपहर को खुशालचन्द से स्वप्न में शिरडी आने को कहा, इसका उल्लेख यहाँ नहीं किया गया है, क्योंकि इसका वर्णन इस सच्चरित्रके 30 वें अध्याय में किया जायेगा।

॥ श्री सद्‌गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु ॥